खुदाराम

हिन्दी ADDA

पांडेय बेचन शर्मा

खुदाराम

https://www.hindiadda.com/khudaram/

1.हमारे कस्बे के इनायत अली कल तक नौमुसलिम थे। उनका परिवार केवल सात वर्षों से खुदा के आगे घुटने टेक रहा था। इसके पहले उनके सिर पर भी चोटी थी, माथे पर तिलक था और घर में ठाकुरजी थे। हमारे समाज ने उनके निरपराध परिवार को जबर्दस्ती मन्दिर से ढकेलकर मसजिद में भेज दिया था।

बात यों थी : इनायत अली के बाप उल्फत अली जब हिन्दू थे, देवनन्दन प्रसाद थे, तब उनसे अनजाने में एक अपराध बन पड़ा था। एक दिन एक दुखिया गरीब युवती ने उनके घर आश्रय माँगा। पता-ठिकाना पूछने पर उसने एक गाँव का नाम ले लिया। कहा -

"मैं बिलकुल अनाथ हूँ। मेरे मालिक को गुजरे छह महीने से ऊपर हो गए। जब तक वह थे, मुझे कोई फिक्र न थी। जमींदार की नौकरी से चार पैसे पैदा करके, वही हमारी दुनिया चलाते थे। उनके वक्त गरीब होने पर भी मैं किसी की चाकरी नहीं करती थी। अब उनके बाद, उसी गाँव में पेट के लिए परदा छोड़ते मुझे शर्म मालूम होने लगी। इसलिए उस गाँव को छोड़, इस शहर में नौकरी तलाश रही हूँ। मुझे और कुछ नहीं, चार रोटियाँ और चार गज कपड़े की जरूरत है। आपको भगवान ने चार पैसे दिये हैं। मेरी हालत पर रहम कीजिए। मुझे अपने घर के एक कोने में रहने और बाकी जिन्दगी ईश्वर का नाम लेने में बिताने दीजिए। आपका भला होगा।"

जात पूछने पर उसने अपने को अहीरिन बताया। देवनन्दन प्रसाद जी सरल हृदय थे। स्त्री की हालत पर दया आ गई। उनकी स्त्री ने भी अहीरिन की मदद ही की। कहा -

"रख लो न। चौका-बर्तन किया करेगी, पानी भरेगी, दो रोटी खायगी और पड़ी रहेगी।"

अहीरिन रख ली गई। दो महीनों तक वह घर का काम-काज सँभालती रही। इसके बाद एक दिन एकाएक वज्रपात हुआ। न जाने कहाँ से ढूँढता-ढूँढता एक आदमी देवनन्दन जी के यहाँ आया। पूछने लगा -

"बाबूजी, आपने कोई नई मजदूरिन रखी है?"

"क्यों भाई? तुम्हारे इस सवाल का क्या मतलब है?"

"बाबूजी, दो महीनों से मेरी औरत लापता है। मैं उसी की तलाश में चारों ओर की खाक छान रहा हूँ। जरा-सी बात पर लड़कर भाग खड़ी हुई। औरत की जात, अपने हठ के आगे मर्द की इज्जत को कुछ समझती ही नहीं।"

इसी समय हाथ में घड़ा और रस्सी लिए वह अहीरिन घर से बाहर निकली। उसे देखते ही वह पुरुष झपटकर उसके पास पहुँचा।

"अरे, फिरोजी! यह क्या? किसके लिए पानी भरने जा रही है?"

"इधर आओ जी।" जरा कड़े होकर देवनन्दन जी ने कहा -

"यह कैसा पागलपन है? तुम किसे फिरोजी कह रहे हो? वह हमारी मजदूरिन है। हमारे लिए पानी लेने जा रही है। उसका नाम फिरोजी नहीं, रुकमिनियाँ है। किसी गैर औरत का इस तरह अपमान करते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

जोश में देवनन्दन जी इतना कह ते गए, मगर रुकमिनियाँ के चेहरे पर नजर पड़ते ही उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उस पुरुष को देखते ही अहीरिन रुकमिनियाँ का मुँह काला पड़ गया। वह काठमारी-सी जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई।

रुकमिनियाँ को फिरोजी कहने वाले ने देवनन्दन को ओर देखकर कहा -

"बाबूजी, आपने धोखा खाया। यह हिन्दू नहीं, मुसलमान है। रुकमिनियाँ नहीं मेरी भागी हुई बीबी फिरोजी है।"

देवनन्दन के काटो तो खून नहीं।

2

शाम को, घर के सरदारों के घूमने-फिरने, मिलने-जुलने के लिए निकल जाने के बाद मुहल्ले की बूढ़ी औरतें और जवान लड़कियाँ अपने-अपने दरवाजों पर बैठकर जोर-जोर से देवनन्दन और फिरोजी की चर्चा करने लगीं।

"बाबा रे बाबा!" एक बूढ़ी ने राग अलापा - "औरत का ऐसा दीदा! मर्द को छोड़कर दूसरे देश और दूसरे के घर पर चली आई।"

"मुँहझौंसी थी तो तुर्किन, बन गयी अहीरिन! मुसलमान औरतों में लाज नहीं होती, माँ! वह तो इस तरह अपने मालिक को छोड़कर दूसरों के यहाँ चली आई, मुझे तो घर के बाहर भी जाने में डर मालूम होता है। निगोड़ी और क्या थी, पतुरिया थी।" एक विवाहित लड़की ने कहा।

सामने के दरवाजे पर से दूसरी अधेड़ औरत ने कहा -

"अब देखो रघुनन्दन के बाप का क्या होता है! दो महीनों तक तुर्किन के हाथ का पानी पीकर और उससे चौका-बर्तन कराकर उन्होंने अपना धरम खो दिया है। हमारे... तो कह रहे थे कि अब उनके घर से कोई नाता न रखा जायगा।"

"नाता कैसे रखा जा सकता है!" पहली बूढ़ी ने कहा, "धरम तो कच्चा सूत होता है। जरा-सा इधर-उधर होते ही टूट जाता है। फिर हमारा हिन्दू का धरम! राम-राम! जिसको छूना मना है, सुबह जिसका मुँह देखना पाप है, उनके हाथ से देवनन्दन ने जल ग्रहण किया। डूब गया... देवनन्दन का खानदान डूब गया। अब उससे खान-पान का नाता रख कौन अपना लोक-परलोक बिगाड़ेगा!"

विवाहिता लड़की बोली -

"यह बात शहर भर में फैल गई होगी। दो-चार आदमी जानते होते तो छिपाते भी। सुबह उस तुर्किन का आदमी चोटी पकड़कर धौं-धौं पीटता हुआ उसे ले जा रहा था। सबने देखा, सब जान गए।"

बस। दूसरे दिन मुहल्ले के मुखिया ने देवनन्दन को बुलाकर कहा - "देखो भाई, अब तुम अपने लिए किसी दूसरे कुएँ से पानी मँगाया करो।"

"क्यों?"

"तुम अब हिन्दू नहीं, मुसलमान हो। दो महीने तक मुसलमान से पानी भराने और चौका-बर्तन कराने के बाद भी क्या तुम्हारा हिन्दू रहना संभव है?"

"मैंने कुछ जान-बूझकर तो मुसलमानिन के हाथ का पानी पिया नहीं। उसने मुझे धोखा दिया। इसमें मेरा क्या अपराध हो सकता है?"

"भैया मेरे, हम हिन्दू हैं। कोई जान-बूझकर गो-हत्या करने के लिए गाय के गले में रस्सा नहीं बाँधता। फिर भी, बँधी हुई गाय के मरने पर बाँधने वाले को हत्या लगती है। प्रायश्चित करना पड़ता है।"

"यह ठीक है। उसके जाने के बाद ही मैंने तमाम मकान साफ कराया-लिपाया-पोताया है। मिट्टी के बर्तन बदलवा दिए हैं। धातु के बर्तन को आग से शुद्ध कर लिया है। इस पर भी जो कुछ प्रायश्चित कराना हो, करा लो। मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ।"

प्रायश्चित-चर्चा चलने पर व्यवस्था के लिए पुरोहित और पण्डितों की पुकार हुई। बस ब्राह्मणों ने चारों वेद, छह शास्त्र, छत्तीसों स्मृति और अठारहों पुराण का मत लेकर यह

व्यवस्था दी कि "अब देवनन्दन पूरे म्लेच्छ हो गए। यह किसी तरह भी हिन्दू नहीं हो सकते।"

उधर देवनन्दन की दुर्दशा का हाल सुनकर मुसलमानों ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी छाती खोल दी। कस्बे के सभी प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित मुसलमानों ने देवनन्दन को अपनी ओर बड़े प्रेम, बड़े आदर से खींचा।

"चले आओ! हम जात-पाँत नहीं, केवल हक को मानते हैं। इसलाम में मुहब्बत भरी हुई है। खुदा गरीबपरवर है। हिन्दुओं की ठोकर खाने से अच्छा है कि हमारी पलकों पर बैठो... मुसलमान हो जाओ।"

लाचार, समाज से अपमानित, परित्यक्त, पतित देवनन्दन सपरिवार अल्ला मियाँ की शरण में चले। वह और करते ही क्या! मनुष्य स्वभाव से ही समाज चाहता है, सहानुभूति चाहता है, प्रेम चाहता है। हिन्दू समाज ने इन सब दरवाजों को देवनन्दन के लिए बन्द कर दिया। इतना हो जाने पर उनके लिए मुसलमान होने के सिवा दूसरा कोई पथ ही नहीं था। देवनन्दन, उल्फत अली बन गए और उनका पुत्र रघुनन्दन, इनायत अली।

देवनन्दन की छाती पर समाज ने ऐसा क्रूर धक्का मारा कि धर्म-परिवर्तन के नौ महीने बाद ही वे इस दुनिया से कूच कर गए।

3

जिन दिनों की घटना ऊपर लिखी गई है, उन्हें भूत के गर्भ में गए सात वर्ष हो गए। तब से हमारे कस्बे की हालत अब बहुत कुछ बदल-सी गई है। पहले हमारे यहाँ सामाजिक या राजनीतिक जीवन बिलकुल नहीं था। सभी पेट के धन्धे की धुन में व्यस्त थे। उन दिनों हमारी दस हजार की बस्ती में, क्लब या सोसायटी के नाते तहसील का अहाता मात्र था, जहाँ नित्य सायंकाल नगर के दस-पाँच चापलूस धनी तहसीलदार से हें-हें करने के लिए या टेनिस खेलने के लिए एकत्र हुआ करते थे। आर्य-समाज का बदनाम नाम तो घर-घर था, मगर सच्चा आर्य-समाजी एक भी न था। एक सज्जन आगरे के 'आर्यमित्र' के ग्राहक थे। वह स्वामी दयानन्द का नाम लेकर कभी-कभी नवयुवकों के विनोद के साधन बना करते थे। वह बनते तो थे आर्य-समाजी, मगर बिलकुल मौखिक। हमें ठीक याद है; वह पुराने समाज की सभी प्रथा या कुप्रथाओं को मानते थे। एक बार उनकी स्त्री ने उनसे सत्यनारायण की कथा सुनने का आग्रह किया और उन्होंने अस्वीकार कर दिया। बस, इसी बात पर आर्य-समाजी पति के मुख पर

सनातनी चण्डी झाड़ू फेरने, कालिख लगाने और चूना करने को तैयार हो गई। तीन दिनों तक मुहल्लेवालों की नींद हराम हो गई। विवश होकर 'महाशयजी' को स्त्री के आगे झुकना पड़ा।

मगर, अब कस्बे का वातावरण बिलकुल परिवर्तित हो गया। गत असहयोग सहयोग आन्दोलन के प्रसाद से हमारा कस्बा भी बहुत कुछ जीवित हो उठा है। अब हमारे यहाँ बाकायदा आर्य-समाज भवन है, और हैं उनके मंत्रीतथा सभापति। एक पुस्तकालय भी है और उसके सभी मन्त्री-सभापति हैं। हिन्दी के अनेक पत्र, अंग्रेजी के दो-तीन दैनिक आते हैं। सैकड़ों बालक, युवक और वृद्ध अखबारी-जीवी बन गए हैं। ऐसे अखबार-जीवियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

उस दिन आर्य-समाज के मंत्रीपण्डित वासुदेव शर्मा समाज-भवन में ही बैठे कोई उर्दू अखबार पढ़ रहे थे। भवन के बाहर-बरामदे में दो पंजाबी 'महाशय' पायजामा और कमीज पहने सायं-सन्ध्या कर रहे थे। उसी समय एक दुबला-पतला लम्बा-सा पुरुष भवन में आया। उसकी आहट पा शर्माजी ने चश्माच्छादित आँखों से उसकी ओर देखा। पहचान गए -

"कहो मियाँ इनायत अली, आज इधर कैसे?"

"आप ही की सेवा में कुछ निवेदन करने आया हूँ।"

शर्माजी ने चश्मा उतार लिया। उसे कुरते के कोने से साफ करने के बाद पुन: नाक पर चढ़ाते-चढ़ाते बोले -

"भाई इनायत, बड़ी शुद्ध हिन्दी बोलते हो?"

"जी हाँ, शर्माजी, मैं बहुत शुद्ध हिन्दी बोल सकता हूँ। इसका कारण यही है कि मेरी नसों में बहुत शुद्ध हिन्दू रक्त बह रहा है। समाज ने जबर्दस्ती मेरे पिता को मुसलमान होने के लिए विवश किया, नहीं तो आज मैं भी उतना ही हिन्दू होता, जितने आप या कोई भी दूसरा हिन्दुत्व का अभिमानी। खैर, मुझे आपसे कुछ कहना है... ।"

"कहिए, क्या आज्ञा है?"

"मैं पुन: हिन्दू होना चाहता हूँ।"

"हिन्दू होना?" आश्चर्य से मुख विस्फारित कर शर्माजी ने पूछा।

"जी हाँ! अब मुसलमान रहने में लोक-परलोक दोनों का नाश दिखाई पड़ता है। इसलिए नहीं कि उस धर्म में कोई विशेषता नहीं है, बल्कि इसलिए कि मेरा और मेरे परिवार का हृदय मुसलमान धर्म के योग्य नहीं। अनन्त काल का हिन्दू-हृदय - हिन्दू सभ्यता का पक्षपाती शान्त हृदय - मुसलमानी रीति-नीति और सभ्यता का उपयोग करने में बिल्कुल अयोग्य साबित हुआ है। मेरी स्त्री नित्य प्रात:काल खुदा-खुदा नहीं, राम-राम जपती हैं। मैं मुसलमान रहकर क्या करूँगा? मेरी माता गंगा-स्नान और बदरिकाश्रम यात्रा के लिए तड़पा करती हैं। मेरा हृदय न तो उन्हें मक्का-मदीना का भक्त बनाने की धृष्टता कर सकता है और न वह बन सकती हैं। मैं मुसलमान रहकर क्या करूँगा? मैं स्वयं मसजिद में जाकर हृदय के मालिक को याद नहीं कर सकता। मेरा हिन्दू हृदय मसजिद के द्वार पर पहुँचते ही एक विचित्र स्पन्दन करने लगता है। उस स्पंदन का अर्थ खुदा और मसजिदवाले के प्रति अनुराग नहीं हो सकता, घृणा भी नहीं हो सकती। वह स्पन्दन घृणा और अनुराग के मध्य का निवासी है। इन्हीं सब कारणों से बहुत सोच-समझकर अब मैंने शुद्ध होकर हिन्दू होने का निश्चय किया है।"

पंजाबी महाशय भी सन्ध्या समाप्त कर ओम्-ओम् करते हुए भीतर आ गए। शर्माजी ने इनायत अली उर्फ रघुनन्दन का परिचय देते हुए उनके प्रस्ताव पर उन दोनों महाशयों की सम्मति माँगी।

"धन्य हो महाशय जी!" एक महाशय बोले - "ऋषि दयानन्द की कृपा होगी तो हमारे वे सब बिछड़े भाई एक-न-एक दिन फिर अपने आर्य धरम में चले आएँगे। इन्हें जरूर शुद्ध कीजिए।"

4

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का बाजार गर्म होने के एक महीना पूर्व एक विचित्र पुरुष हमारे कस्बे में आए। उनकी अवस्था पचास वर्षों से अधिक जान पड़ती थी। वह वस्त्र के नाम पर केवल लँगोटी धारण किया करते थे। वही उनकी सारी गृहस्थी और सम्पत्ति थी। उनका मुख तो रोबीला नहीं था, पर उस पर विचित्र आकर्षण दिखाई देता था। दाढ़ी फुट भर लम्बी थी। सर के बाल भी बड़े-बड़े थे।

उनमें एक ऐसा चमत्कार था, जिससे कस्बे के छोटे-छोटे लड़के उन पर जान दिया करते थे। हाँ, उनका नाम बताना तो भूल ही गया। वह अपने को 'खुदाराम' कहा करते थे। खुदाराम गली में आए हैं, यह सुनते ही लड़कों की मंडली जान छोड़कर उनकी ओर झपट पड़ती - "खुदाराम, पैसे दो! खुदाराम, पैसे दो!" की आवाज से गली गूँज उठती

थी। पहले तो खुदाराम दो-चार बार लड़कों को मुँह बिगाड़-बिगाड़कर डराने की कोशिश करते, फिर दो-तीन बच्चों को पीठ पर चढ़ाकर बगल में दबाकर या कन्धों पर उठाकर भाग खड़े होते "भागो! भागो! हो हो हो? लेना जी?" आदि कहते हुए अन्य लड़के खुदाराम को रगेद लेते। अन्त में लाचार हो वह खड़े हो जाते, बच्चों की पीठ या कन्धे के नीचे उतार देते और पूछने लगते -

"बन्दरो! क्या चाहिए?"

"पैसे खुदाराम, पैसे!"

खुदाराम बड़े जोर से हँसते-हँसते खाली मुट्ठी को बन्द कर इधर-उधर हाथ चलाने लगते। चारों ओर झन्न-झन्न की आवाज गूँज उठती। लड़के प्रसन्न होकर पैसे लूटने लगते - और खुदाराम नौ दो ग्यारह हो जाते।

खुदाराम को सबसे अधिक इन लड़कों ने मशहूर किया।

इसके बाद एक घटना और हुई, जिससे उनकी शोहरत चौगुनी बढ़ गई। किसी गरीब चमार के पाँच वर्ष के पुत्र को हैजा हो गया था। उसके पास वैद्य, हकीम या डाक्टर बाबू के लिए पैसे नहीं थे। कई जगह जाने पर भी किसी ने उस अभागे की सुध न ली। बेचारा लड़का उपचार के अभाव पर मरने लगा।

उसी समय उधर से खुदाराम लड़कों की मण्डली के साथ गुजरे। चमार की स्त्री को दरवाजे पर बैठकर रोते देख, वह उसके सामने जाकर खड़े हो गए। पूछने लगे -

"क्यों रो रही है?"

स्त्री ने उत्तर तो कुछ न दिया, हाँ, स्वर को 'पंचम' से 'निषाद' कर दिया।

"क्यों रोती है? बोलती ही नहीं, तुझे भी पैसे चाहिए?"

"पैसे नहीं," स्त्री ने इस बार हिचकते-हिचकते उत्तर दिया, "दवा चाहिए। मेरा लाल हैजे से मर रहा है!"

"तेरे बच्चे को हैजा हो गया है? पगली कहीं की। इतना खाना क्यों खिला दिया? मुझे तो कभी कुछ खिलाती नहीं। कुछ खिला तो तेरा बच्चा अभी चंगा हो जाय।"

"बाबा, मेरे घर में तुम्हारे खाने लायक है ही क्या? कहो तो चने खिलाऊँ।"

"ला, ला। जो कुछ भी हो, दौड़कर ले आ। तेरा बच्चा अभी अच्छा हो जायगा।"

स्त्री अपने मकान में गई और एक छोटी-सी पोटली में पाव-डेढ़-पाव भुने चने ले आई। खुदाराम ने पोटली लेकर बालक-मण्डली को चने दान करना आरम्भ किया। देखते-देखते पोटली साफ हो गई। केवल चार-पाँच चने बच रहे। स्त्री के हाथ में देते हुए उन्होंने कहा -

"इन चनों को पीस कर बच्चे को पिला दे। यह उसका हिस्सा है। ले जा!"

दूसरे दिन उसी चमारिन ने कस्बे भर में यह बात मशहूर कर दी कि खुदाराम पागल नहीं, होशियार हैं। मामूली आदमी नहीं, फकीर हैं, देवता हैं।

फिर तो हिन्दू-मुसलमान दोनों जाति के लोगों ने - विशेषत: स्त्रियों ने - खुदाराम को न जाने क्या-क्या बना डाला। कितनों के बच्चे उनकी ऊट-पटाँग औषधियों से अच्छे हो गए। कितनों को खुदाराम की कृपा से नौकरी मिल गई। कितने मुकदमे जीत गए। कस्बा का कस्बा उन्हें पूछने लगा।

मगर, खुदाराम ज्यों के त्यों रहे। उनका दिन-रात का चारों ओर लड़कों की मण्डली के साथ घूमना न रुका। अच्छे से अच्छे धनी भी उन्हें कपड़े न पहना सके। किसी के आग्रह करने पर वह कपड़े-धोती, कुरता-टोपी पहन तो लेते, मगर उसके घर से आगे बढ़ते ही टोपी किसी लड़के के मस्तक पर होती, धोती किसी गरीब के झोंपड़े पर और कुर्ता किसी भिखमंगे के तन पर। किसी-किसी दिन तो दो-दो बजे रात को किसी गली में खुदाराम को कण्ठ-ध्वनि सुनाई पड़ती -

तू है मेरा खुदा मैं हूँ तेरा खुदा,

तू खुदा मैं खुदा, फिर जुदाई कहाँ?

5

सात आदमी आपस में बात करते हुए समाज-भवन की ओर जा रहे थे। उनमें एक तो समाज के मंत्रीमहाशय थे, दो हमारे परिचित पंजाबी और चार बाहर से आए हुए दूसरे आर्य-समाजी थे। बातें इस प्रकार हो रही थीं -

"मुसलमान लोग भरसक इनायत अली को हिन्दू न होने देंगे।"

"यों न होने देंगे? अजी अब वह जमाना लद गया। यहाँ के सभी हिन्दू हमारे साथ हैं।"

"लड़ाई हो जाने का भय है।"

"अगर इस बात को लेकर कोई लड़े तो लड़े। बेवकूफी का भार लड़ाई छेड़ने वाले पर होगा।"

"अच्छा, हम लोग इनायत के परिवार को केवल शुद्ध करें - वेद भगवान की सवारी निकालने से लाभ?"

एक साथ कह उठे - "वाह! वेद भगवान की सवारी क्यों न निकालें। हम अपने बिछुड़े भाई को पाएँगे। ऐसे मौके पर आनन्द-मंगल मनाने से डरें क्यों?"

"सवारी पर," पहले महाशय ने कहा - "मुसलमानों ने आक्रमण करने का निश्चय कर लिया है। यह मैं सच्ची खबर सुना रहा हूँ।"

"देखो भाई, इस तरह दबने से काम न चलेगा। हम किसी के धार्मिक कृत्यों में बाधा नहीं देते, तो कोई हमारे पथ में रोड़े क्यों डालेगा? फिर, अगर उन्होंने छेड़ा, तो देखा जायगा। भय के नाम पर धर्म कभी न छोड़ा जायगा।"

इसी समय बगल की एक गली से लँगोटी लगाए खुदाराम निकले। वह वही गुनगुना रहे थे -

तू है मेरा खुदा, मैं हूँ तेरा खुदा,

तू खुदा, मैं खुदा, फिर जुदाई कहाँ?

मंत्री महाशय ने पुकारा -

"खुदाराम!"

"चुप रहो!" खुदाराम ने कहा - "मैं कोई युक्ति सोच रहा हूँ।"

"कैसी युक्ति सोच रहे हो, खुदाराम? हमें भी तो बताओ।"

"सोच रहा हूँ कि क्या उपाय करूँ कि खुदा-खुदा में लड़ाई न हो। तुम लोग लड़ोगे?"

"नहीं, लड़ने का विचार नहीं है, पर सवारी जरूर निकलेगी।"

"खाना नहीं खाऊँगा, पर मुँह में कौर जरूर डालूँगा। हा हा हा हा! यही मतलब है न?"

"लाचारी है, खुदाराम।"

"तो धर्म के नाम पर खून की नदी बहेगी? हा हा हा हा। तुम लोग इन्सान क्यों हुए? तुम्हें तो भालू होना चाहिए था। शेर होना चाहिए था, भेड़िया होना चाहिए था। वैसी अवस्था में तुम्हारी रक्त-पिपासा मजे में शान्त होती। धर्म के नाम पर लड़ने वाले इन्सान क्यों होते हैं?"

अपरिचित आगन्तुक आर्यों ने शर्माजी से पूछा-

"क्या यह पागल है?"

"हाँ-हाँ," खुदाराम ने कहा - "कुरान नहीं पढ़ा है, इसलिए पागल है, सत्यार्थ प्रकाश नहीं देखा है, इसलिए पागल है, धर्म के नाम खूँरेजी नहीं पसन्द करता, इसलिए पागल है, खद्दर का कुर्ता पहनता, इसलिए पागल है, लेक्चर नहीं दे सकता, इसलिए खुदाराम जरूर पागल है। हा हा हा हा! खुदाराम पागल है। मुसलमान कहते हैं - "तू पागल है, इस बीच में न पड़।" हिन्दू भी यही कहते हैं। अच्छी बात है - लड़ो! अगर होशियारी का नाम लड़ना ही है तो - लड़ो।"

तू भी इन्सान है, मैं भी इन्सान हूँ,

गर सलामत हैं हम, तो खुदाई कहाँ।

तू है मेरा खुदा, मैं हूँ तेरा खुदा,

तू खुदा, मैं खुदा, फिर जुदाई कहाँ?

खुदाराम नाचना-कूदता 'हो हो हो' करता अपने रास्ते लगा।

6

कस्बे के हजारों हिन्दू मर्द समाज-मन्दिर को ओर वेद भगवान के जुलूस में शामिल होने के लिए चले गए। मुसलमान पुरुष भी, पुराने पीर की मस्जिद में, जुलूस में बाधा डालने के लिए सशस्त्र एकत्र हो गए। हिन्दू और मुसलमान दोनों घरों पर या तो बूढ़े बचे थे या बच्चे और स्त्रियाँ। घर-घर का दरवाजा भीतर से बन्द था।

एक मुसलमान के दरवाजे पर किसी ने आवाज दी -

"माँ!"

"कौन है?"

"जरा बाहर आओ, मैं हूँ खुदाराम।"

दरवाजा खोलकर बूढ़ी बाहर निकली।

"क्या है खुदाराम? खाना चाहिए?'

"नहीं माँ, आज एक भीख माँगने आया हूँ - देगी न?"

"क्या है फकीर? तुम्हें क्या कमी है? माँगो, तुमने मेरी बेटी की जान बचाई है। हम हमेशा तुम्हारे गुलाम रहेंगे। माँगो क्या लोगे?'

"पहले कसम खा - देगी न?"

"कसम पाक परवरदिगार की। खुदाराम, तुम्हारी चीज अगर मेरे इमकान में होगी, तो जरूर दूँगी।"

"तो, चलो मेरे साथ! हम लोग हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा रोकें। बच्चों को भी ले लो। मैं मुहल्ले भर की - कसबे भर की औरतों, बच्चों की पलटन लेकर दोनों जातियों के पुरुषों पर आक्रमण करूँगा, उन्हें खुदा या धर्म के नाम पर लड़ने से रोकूँगा।"

मुसलमान जननी अवाक-सी खड़ी रह गई! खुदाराम कहता क्या है?

"चुप क्यों हो गई, माँ? तूने मुझे भीख देने की कसम खाई है। मैं तेरे हित की बात कहता हूँ! इस रक्तपात में पुरुषों के नहीं, स्त्रियों के कलेजे का खून बहाया जाता है। स्त्रियाँ विधवा होती हैं, माताएँ अपने बच्चे खोती हैं, बहिनें अपमानित होती हैं। पुरुषों की यह ज्यादती तुम्हीं लोगों के रोके से रुकेगी। चलो! उन पत्थरों के आगे रोओ और उन्हें लड़ने से रोको। उन्हें बताओ कि तुम्हारे शरीर तुम्हारी माताओं की धरोहर हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका नाश करनेवाले तुम कौन हो? देर न करो, नहीं तो सब चौपट हो जायगा।"

एक ओर उत्तेजित मुसलमान खुदा के नाम पर ईट और डंडे चलाने पर उतारू थे, दूसरी ओर हिन्दू वेद भगवान का जूलूस, शुद्ध (इनायत अली) रघुनन्दन प्रसाद के परिवार के साथ और हजारों हिन्दुओं के साथ मसजिद के पास डटा था। युद्ध छिड़ने ही वाला था कि गंगा की कल-कल धारा की तरह हजारों स्त्रियों की कण्ठ-ध्वनि

मुसलमान-दल के पीछे सुनाई पड़ी। पहले खुदाराम गाते और उनके बाद स्त्रियाँ उसी पद को दुहराती थीं -

तू है मेरा खुदा, मैं हूँ तेरा खुदा,

तू खुदा मैं खुदा, फिर जुदाई कहाँ?

छोटे-छोटे बच्चों के कण्ठ की उस कोमलता के आगे, माताओं के कण्ठ की करुण धारा के आगे, उत्तेजित युवकों के हृदय की राक्षसता मुग्ध होकर, पुलकित होकर और नतमस्तक होकर खड़ी हो गई! मुसलमान-दल ने स्त्रियों के इस जलूस के लिए चुपचाप रास्ता दे दिया। हिन्दू दलवाले आँखें फाड़-फाड़कर खुदाराम और उसकी स्वर्गीय सेना की ओर देखने लगे। उस सेना में हरेक हिन्दू और प्रत्येक मुसलमान के घर की माताएँ और बहिनें, बेटे और बेटियाँ थीं।

"तुम लोग क्यों यहाँ आईं?" मुसलमानों ने भी पूछा।

"तुम लोग क्यों यहाँ आईं?" हिन्दुओं ने भी प्रतिध्वनि की तरह मुसलमानों के प्रश्नों को दुहराया। एक मुसलमान बूढ़ी आगे बढ़ी - "हम आई हैं तुम्हें मरने से बचाने के लिए। तुम हमारे बेटे - वे बेटे, जिन्हें हमने रात-रात भर जागकर, भूखों रहकर, दुआएँ माँगकर अपनी आँखों को खुश रखने के लिए, दिल को शांत रखने के लिए इतना बड़ा किया है। तुम्हारे लिए हम खुदा की इबादत करती हैं - तुम्हीं हमारे खुदा हो।"

"यह क्या हो रहा है? धर्म के नाम पर खून बहाने की क्या जरूरत है? तुम्हें यह शरारत किस शैतान ने सिखाई है? बच्चो, तुम्हारी माँएँ तुम्हें खोकर अन्धी हो जायँगी। उनकी जिन्दगी खराब हो जायगी। बहिश्त पाने पर भी तुम्हें चैन न मिल सकेगा! लड़ो मत! खून से पाजी शैतान भले ही खुश हो जाय, पर खुदा कभी नहीं खुश हो सकता। खुदा अगर खून पसन्द करता, तो हमारे वजू करने के लिए पानी न बनाकर खून ही बनाता। गंगा खूनी गंगा होती, समन्दर खून का समन्दर होता। खून के फेर में न पड़ो, मेरे कलेजे। खुदा खून नहीं पसन्द करता।"

"वेद के पगलो," खुदाराम ने हिन्दुओं को ललकारा - "चलो, ले जाओ अपना जुलूस? माताएँ तुम्हें रास्ता देती हैं।"

मुसलमानों के हाथ के शस्त्र नीचे झुक गए। बाजा बजाने वाले बाजा बजाना भूल गए। माताओं ने रास्ता बनाया और वेद भगवान की सवारी हजारों मंत्र-मुग्ध हिन्दुओं के साथ निकल गई।

सावन के बादल की तरह मधुर ध्वनि से खुदाराम पुन: गरजे, माता वसुन्धरा की तरह माताओं के हृदय से पुन: प्रतिध्वनि हुई -

तूने मन्दिर बनाया, तू भगवान है,

मैंने मसजिद उठाई, मैं रहमान हूँ।

तू भी भगवान है, मैं भी भगवान हूँ

तू खुदा, मैं खुदा फिर जुदाई कहाँ?

इस पवित्र जुलूस के नेता थे खुदाराम, उनके पीछे हिन्दू-मुसलमान बच्चे, बच्चों के पीछे दोनों जाति की माताएँ और सबके पीछे मुसलमान पुरुष - जुलूस के सशस्त्र रक्षकों की तरह चल रहे थे। प्रकृति पुलकित कलेवरा थी, तारिकाएँ खिलखिला रही थीं, चन्द्रमा हँस रहा था - वह दृश्य पृथ्वी का स्वर्ग था।